नव उदारवादी सामाजिक परिवेश में गोरख पाण्डे की कविताएँ- एक आलोचनात्मक अध्ययन

POEMS OF GORAKH PANDEY IN THE NEO LIBERAL SOCIAL CONTEXT -A CRITICAL STUDY.

(MRP (H)-1348/13-14/KLMG060/UGC-SWRO dated 28 Mar 2014)

Final Report Submitted to

UNIVERSITY GRANTS COMMISSION

By
Dr.A.S.SUMESH
Principal Investigator &
Assistant Professor of Hindi

DEPARTMENT OF HINDI
M.E.S. COLLEGE, NEDUMKANDAM
IDUKKI, KERALA-685553
March, 2016

CERTIFICATE

This is to certify that this Minor Research Project entitled ""**POEMS OF GORAKH PANDEY IN THE NEO LIBERAL SOCIAL CONTEXT -A CRITICAL STUDY"** is a bonafide record of work carried out by **Dr.A.S.Sumesh, Assistant Professor of Hindi, M.E.S.College Nedumkandam,** with the financial support of University Grants Commission, SWRO Bangaluru, vide UGC letter No.F. **MRP (H)-1348/13-14/KLMG060/UGC-SWRO dated 28 Mar 2014.**

Principal

DECLARATION

I, **Dr.A.S.Sumesh, Assistant Professor of Hindi, M.E.S.College Nedumkandam,** hereby declare that this Minor Research Project entitled ""**POEMS OF GORAKH PANDEY IN THE NEO LIBERAL SOCIAL CONTEXT -A CRITICAL STUDY"** is a bonafide record of work carried out by me with the financial support of University Grants Commission, SWRO Bangaluru, vide UGC letter No.F. **MRP (H)-1348/13-14/KLMG060/UGC-SWRO dated 28 Mar 2014.**

Dr.A.S.Sumesh

Principal Investigator,UGC MRP
(Assistant Professor of Hindi, MES College Nedumkandam)

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

गोरख पाण्डेय-विचारधारा एवं प्रतिबद्धता ०५

द्वितीय अध्याय

अभिव्यक्ति की प्रतिबद्धता २२

- सामाजिक पक्षधरता और तानाशाही तंत्र के प्रति विद्रोह

तृतीय अध्याय ३६

आदमी की हैसियत के लिए लडाई

- दलित मुक्ति/स्त्री विमर्श पर आधारित रचनाएँ

चतुर्थ अध्याय-उपसंहार ४९

- **नव उदारवादी परिप्रेक्ष्य में गोरख पाण्डे की कविताओं का मूल्यांकन**
-

परिशिष्ट ५४

- **संदर्भ ग्रन्थ सूची**

प्रथम अध्याय

गोरख पाण्डेय-विचारधारा एवं प्रतिबद्धता

वैचारिकता प्रगतिशील जीवन का सबसे मूल आधार है। विचाररहित आन्दोलन किसी भी संदर्भ में संभव भी नहीं है। मानव जीवन का इतिहास वैचारिकता एवं वैचारिक आन्दोलनों का इतिहास है। *''बिना किसी स्पष्ट वैचारिकता से चलाए जानेवाले आंदोलन व्यक्ति केन्द्रित होकर रह जाते हैं। और व्यक्ति केन्द्रित कोई भी आन्दोलन सफलता तक पहुँचने से पहले ही दम तोड देता है।''*(डॉ सूरज पालीवाल, हमारे समय के स्त्री विमर्श का यथार्थ, मधुमति, अप्रैल-मई २००४) अर्थात् मानव जीवन की प्रगति के पीछे वैचारिकता से निर्मित आन्दोलन का महत्वपूर्ण स्थान है। बौद्विक स्तर पर जन्म लेनेवाली हर क्रांति की सफलता तब तक संभव नहीं है, जब तक उसका प्रयोग एवं प्रचार आम साधाराण जनता के बीच में नहीं है। अतः आन्दोलन के केन्द्र में जनता को रखना या उनके माध्यम से आन्दोलन चलाना ही विचारधारा की सफलता है। जनवादी आन्दोनल की सफलता के पीछे यही एक कारण है। क्यों कि हर एक जनवादी विचार जन केन्द्रित रहा है। इसलिए जब जन चेतना की चर्चा हम करते हैं तब मार्क्सवाद उसमें स्वतः उपस्थित हो जाते हैं।

मानव जीवन के समस्त क्षेत्रों के विकास के लिए एक प्रगतिशील जीवन दृष्टि की ज़रूरत थी। मार्क्सवाद ने उसकी पूर्ति की। समाज जब आर्थिक शोषण, सामाजिक समानाधिकार, समाज में प्रतिष्ठा, पूँजीवाद की समाप्ति, नव उदारवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह आदि विभिन्न मुद्दों पर बहस कर रहे थे तब अपनी प्रतिबद्व विचार धारा के साथ मार्क्सवाद ज़मीन पर उतरी। अपनी प्रगतिशील जीवन दृष्टि, मानवतावाद की महत्ता आदि के कारण सामाजिक विचार धारा के साथ साथ साहित्यिक विचारधारा के रूप में भी मार्क्सवाद की प्रतिष्ठा हुई। क्यों कि हम जानते हैं कि *''रचनाकार की विचार धारा कुछ एक अपवादों को छोडकर हमेशा प्रगतिशील होती है। वह अपने समय के सबसे प्रगतिशील वर्ग का पक्षधर होता है। वह उच्चतर मूल्यों की हिमायत करता है, नैतिक आदर्शों की स्थापना की कोशिश करता है। समता और सामाजिक न्याय में विश्वास करता है।''* (विश्वनाथ प्रसाद तिवादी, रचना के सरोकार, पृ.२१५)

सन् साठ के बाद के हिन्दी साहित्यिक इतिहास में जनवादी काव्य पद्वति का विशेष महत्व रहा है। हिन्दी के जनवादी काव्य ने सर्वहारा के प्रति सहानुभूति की दृष्टि सर्वदा प्रकट की है। धूमिल, वेणुगोपाल, अरुण कमल, मंगलेश उबराल, गोरख पाण्डेय आदि अनेक कवि हैं जिन्होंने जनता के मुक्ति आन्दोलन को अपने साहित्यिक रचना कर्म के माध्यम से संपन्न बनाया है। स्वाधीनता ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न पक्षों को प्रभावित किया था। विदेशी शासन से स्वदेशी शासन की ओर परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था ने जनता को सुन्दर सपने देखने का आह्वान किया था। लेकिन विभाजन की विभीषिका ने सभी सपनों को समाप्त किए। अधिकार एवं शासन की लोलुपता ने कुर्सी की राजनीति को जन्म दिया। स्वतंत्र भारत की जन चेतना को अधिकार की कुर्सी ने बाहर कर दिया। अंत में शासक एवं

शासितों की दूरी भारतीय समाज की सबसे बडी दूरी बन गई। यहाँ चुनौती उन लोगों को थी, जिनके पास कुछ बोलने का, कुछ करने का, कुछ लिखने का साहस बचा हो। उनको हमने साहित्य के ही नहीं सामाजिकता के भी सिंहासन पर बिढाया। उस समय के साहित्यिकों को हमने जन नेता के रूप में देखा और उनके साहित्य को जन साहित्य की संज्ञा दी। अपनी मानवोन्मुखता, सहस्थिति, सहिष्णुता, सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सहकारिता आदि विभिन्न कारणों से इस काल के साहित्य अपनी पूर्ववर्ती साहित्य से भिन्न मान गई, और उसे जनवादी साहित्य के रूप में प्रतिष्ठा मिली।

जागते रहो सोनेवालो नामक काव्य संग्रह में गोरख पाण्डेय ने भी जन सामान्य के जीवन वृत्तांत को कविता का इतिवृत्त बनाया है। वर्ग समर के सिद्वांत, मजदूर-श्रमिक लोगों की दुरवस्था, शासक वर्गों द्वारा श्रमिक लोगों पर किए जानेवाले अत्याचार, नव उदारवादी सामाजिक परिवेश आदि पर तीव्र संवेदनाएँ कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त की है। आर्थिक-सामाजिक-राजनैतिक शोषण के शिकार बनकर सामान्य जनता का जीवन जितना कठिन है उसका मार्मिक दस्तावेज़ है पाण्डेय जी की कविताएँ। आम जनता राजनीति की कुटिलता को बिना समझकर उसपर भरोसा करते हैं। वे अनजाने ही कुटिल राजनीति को प्रोत्साहन देते हैं। अतः अपनी कैद की फैसला वे स्वयं कर रहे हैं। चिंतित कवि पाण्डेय जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से इन कुरीतियों से लडने का आह्वान दिया है। वे मानते हैं कि सभी प्रकार के सामाजिक-राजनैतिक असमानता के मूल में जनता की लापरवाही है। इसलिए कवि के सामने एक ही रास्ता है वह है जनजागरण की।

जनवादी विचारधारा के कवि शोषित एवं सर्वहारा लोगों की समता केलिए कर्मरत थे। इसलिए मार्क्सवादी विचारधारा की चिंतन पद्वतियों से उसका गहरा संबन्ध भी है।

अपने अधिकारों के लिए सदा कर्मरत किसान एवं मजदूर लोगों के लिए यह विचारधारा सबसे सबल शस्त्र रहा है। कवि गोरख पाण्डेय अपनी कविताओं के माध्यम से सदा उन लोगों के लिए कर्मरत थे। जब बात शासन के विरुद्व लडने की हो, तब उनकी आवाज़ तेज़ एवं स्पष्ट है-

वह कहता है उसको रोटी-कपडा चाहिए

बस इतना ही नहीं, उसे न्याय भी चाहिए

इस पर से उसको सचमुच आज़ादी चाहिए

उसको फाँसी दे दो। (उसको फाँसी दे दो, पृ.७२)

आज़ादी के बाद की शासन व्यवस्था ने जनता को फिर से लडाई के लिए मजबूर किया। आर्थिक अराजकता ने सभी क्षेत्रों को ग्रसित कर दिया। *'' आज़ादी के बाद की आर्थिक नीतियों के कारण राजनीति में भ्रष्टाचार, भाई-भतीजा वाद, परिवार वाद, क्षेत्रीय संकीर्णता वाद एवं जनता की समस्याओं को हल न करने की प्रवृत्ति केन्द्रीय राजनीतिक प्रवृत्ति के रूप में बलबती हुई है।''*(जगदीश्वर चतुर्वेदी, मार्क्सवाद और आधुनिक हिन्दी कविता, पृ.७१)

जब क्रांतिकारियों ने अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाई तब उनको दबाने की प्रक्रिया शासकों ने शुरु किया। क्रांति को उचित ढंग से संबोधित करने के बजाए उसको दबाने की प्रक्रिया शासकों ने जिस दिन शुरु किया उस दिन जनतंत्र की मृत्यु हुई।

वह कहता है उसे हमेशा काम चाहिए

सिर्फ काम ही नहीं, काम का फल भी चाहिए

काम और फल पर बेरोक दखल भी चाहिए

उसको फाँसी दे दो। (उसको फाँसी दे दो, पृ.७२)

भाषण और शासन के तंत्र में जनता को फँसाकर अधिकार की कुर्सी में एक बार बैठ जाने के बाद जनता को भूलना आसान है। यही जनतंत्र है। यही राष्ट्रतंत्र है। इसलिए जनतंत्र की कुर्सी को भूखे-नंगे लोगों की छाती पर बिठाकर वे आसानी से खुशहाल का संदेश देते हैं।

वह कहता है कोरा भाषण नहीं चाहिए

झूठे वादे हिंसक शासन नहीं चाहिए

भूखे-नंगे लोगों की जलती छाती पर

नकली जनतंत्रीय सिंहासन नहीं चाहिए

उसको फाँसी दे दो। (उसको फाँसी दे दो, पृ.७२)

आज़ादी के बाद की जनतांत्रिक व्यवस्था में जनता सदा ही विपक्ष में रहा। पूँजीवाद, साम्राज्यवाद तथा शासनवाद के षडयंत्र में जनतंत्र हिल गए। *''यहाँ आज़ादी आ गई लेकिन जो साम्राज्यवादी-पूँजीवादी व्यवस्था थी, वह इसे रिकंसाइल नहीं कर पाई और देश की सत्ता जिन लोगों के हाथ में आई उनका नज़रिया इस देश की सभ्यता-संस्कृति के प्रति हेय था।''* (डॉ ब्रह्म देव शर्मा, किसानों का शोषण हिन्दी क्षेत्र की ज्वलंद समस्या है,

कल केलिए, अप्रैल-सितं ०४, पृ.४१) वह क्रांति का समय था। इसलिए सब आह्वान क्रांति के लिए थे।

वह कहता है अब वह सबसे साथ चलेगा

वह शोषण पर टिकी व्यवस्था को बदलेगा। (उसको फाँसी दे दो, पृ.७२)

आज जब हम उत्तर उपनिवेशवादी सामाजिक धरातल पर बैठकर विचार करते हैं तब गोरख पाण्डेय की हर एक पंक्ति हमें भविष्यवाणी के रूप में दीख पडती है। क्यों कि उस समय जब उन्होंने शासन की कूटनीति के प्रति सजग रहने की चेतावनी दी, तब हमने उसको साहित्यिक पंक्ति के रूप में देखकर केवल आस्वादन किया। आज वह विभीषिका हमारे सामने प्रस्तुत है। आज उदारवादी सामाजिक परिवेश ने सब चीज़ों की बिक्री का संदेश देकर वही बातें दुहराते हैं जिसको दशकों पहले सामंतवादी, पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था ने कहा था। क्या है आज़ादी? इस सवाल का जवाब आज भी हमारे पास नहीं है। ‘‘आज़ादी के बाद भी देश के गाँव गुलामी की स्थिति में बने रहे। गुलामी की सबसे बुरी अवस्था वह होती है जिसमें गुलाम अपने को आज़ाद मान ले। भारतीय गाँवों की आज भी स्थिति यही है।’’ केवल गाँव की नहीं पूरे देश की यही स्थिति है। नव उदारवाद ने पूरे देश को एक मंण्डी में परिवर्तित कर दिया। आज हमें पता नहीं है कि कौन किसके अधीन में है। क्या मीठा है और क्या नहीं है।

किसकी मेहनत और मशक्कत

किसके मीठे-मीठे फल हैं?

अपनी मेहनत और मशक्कत

उनके मीठे-मीठे फल है। (मेहनतकशों का गीत, पृ.७४)

सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए भारत में सबसे अनिवार्य चीज़ है अर्थ। जनतांत्रिक शासन होने पर भी आर्थिक व्यवस्था को अपने अधीन रखने में पूँजीपति एवं स्त्रामाज्यवादी लोग सफल हुए हैं। आज जनतंत्र साम्राज्यवादी तंत्र बन गए हैं। कुछ उदारवादी धोखेबाज लोगों के हाथ में देश की शासन व्यवस्था को सौंपने का दुस्साहस हमने किया।

आज़ादी हम ने पैदा की

क्यों गुलाम हम, क्यों निर्बल है?

धन-दौलत का मालिक कैसे

हुआ निकम्मों का यह दल है?

कैसी है यह दुनिया उनकी

कैसा यह उनका विधान है?

उलटी है यह दुनिया उनकी

उलटा ही उनका विधान है। (मेहनतकशों का गीत, पृ.७४)

डॉ.नामवर सिंह कहते हैं- *'' मज़दूर को तब तक वर्ग-चेतन नहीं कहा जा सकता, जब तक वह यह न समझ ले कि पूँजीवाद की समाप्ति में ही उसके वर्ग का वास्तविक हित है। इस बोध के अभाव में मज़दूर मिथ्या चेतना का शिकार माना जाता है।''* (कविता के नए प्रतिमान, पृ.२३४) मेहनत का फल मेहनतकशों का है। इस बात को कवि प्रस्तुत करते हैं-

हम मेहनत करने वालों के

ही ये सारे मीठे फल हैं

ले लेंगे हम दुनिया सारी

जान गए एकता में बल है। (मेहनतकशों का गीत, पृ.७४)

स्वतंत्र भारत के जनतंत्र ने जनता की ज़रूरतों से ज्यादा शासन एवं शासक की ज़रूरतों को प्रमुखता दी। हिन्दुस्तान के सारे औद्योगिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक क्षेत्र भ्रष्टाचार से ग्रसित हुए।

हे प्रभु नामक कविता में गोरख पाण्डेय ने सभी भ्रष्टाचारों को निःशब्द सहनेवाली भारतीय मनःस्थिति का चित्रण किया है वह आज के संदर्भ में भी समीचीन है। स्वयं पापी व अधर्मी मानते हुए अपने ऊपर किए जानेवाले सभी अत्याचारों को निशब्द सहते हुए भारतवासी व्यर्थ प्रार्थनाओं में जी रहे हैं।

हम तो कुटिल खलकामी हैं, हे प्रभु।

हम हिन्दुस्तानी हैं, हे प्रभु।

हमारी घडियाँ और रेलें

ठीक समय पर नहीं चलतीं

हमारे नेता कभी सच के किनारे

नहीं जाते। (हे प्रभु, पृ.७५)

हमें इस बात का पूरा ज्ञान है कि हमारी स्थिति बेहद बुरी है। लेकिन विद्रोह करने का साहस हमें नहीं है। हमारे अभावों को नियति के न्याय पर छोडने का, उसको सहने का निश्चय हमने लिया है।

हम गरीबी और गैर-बराबरी को

भाग्य समझते हैं

और गुलामी को धर्म

क्योंकि हिन्दुसतानी हैं

जुल्म जारी रहता है

मगर हम विद्रोह नहीं करते

क्योंकि हिन्दुस्तानी है। (हे प्रभु, पृ.७६)

उपर्युक्त पंक्तियों में एक व्यंग्य है। लेकिन कुटिल राजनीति की विलासिता का परिचय भी उससे मिलता है। दिल और दिमाग दोनों की दृष्टियों में आम जनता को अधीन में रखने की कूट रणनीति के प्रति चेतावनी भी इन पंक्तियों में है।

वर्तमान उदारवादी सामाजिक व्यवस्था प्रभु वही है जिसको हमने राजनैतिक की संज्ञा दी है। जनता को लूटने के लिए प्रभु के रूप में वे ही बैठै हैं। शांति और विनाश दोनों का संदेश वे सदा देते रहते हैं और हमें बेवकूफ बनाकर लूट के राजतंत्र का निर्माण करते हैं। हमारी रुचि को, हमारी जिह्वा को, हमारी इच्छा को, हमारी आकांक्षा को, हमारे आग्रह को, उन लोगों ने अपनी परिभाषा दी है। ईश्वर के रूप में सर्वगुणसंपन्न, समानता एवं

एकता का गुणगान करनेवाले बनकर आज उपभोक्ता के रूप में हमें परिवर्तित करते हुए वे पूँजीपति बैठे हैं जिनके हाथ में प्रजातंत्र कठपुतली है।

हमारी मेहनत और दिमाग के

आप स्वामी है

आप पूँजी हैं, लाभ हैं, लूट हैं, खसोट हैं

आप धौंस हैं, धमकी हैं, चोट हैं

आप शांति के समाजवादी कपोत हैं

आप युद्ध के स्रोत हैं

आप नाना रूपधारी हैं, हे प्रभु। (हे प्रभु, पृ.७५)

प्रभु की उपमा आज उन तमाम लूट के चेहरों में प्रतिबिंबित हैं जिन्हें हम कॉर्पोरेट के नाम से पुकारते हैं। गोरख पाण्डेय की पंक्तियाँ आज के संदर्भ में केवल पढने की ज़रूरत है। पुर्नपाठ की कोई भी ज़रूरत नहीं हैं। क्यों कि उनकी कविता सार्वकालिक है।

Every political power needs an ideological-spiritual basis for commanding the loyalty of its citizens. The ultimate sanction of political power is force, but that alone does not suffice to maintain law and order. The people have to accept a government voluntarily if it is to function normally. And that demands some commonly accepted concept of loyalty to the state. (Marxism and The Bhagvat Geeta-S.G. Sardesai Page:21)

जब तक जनता का सहयोग नहीं होग तब तक शासन निष्प्रभ रहेगा। भारतीय संदर्भ में जनता से कटी हुई शासन व्यवस्था का दुष्परिणाम स्पष्ट परिलक्षित है। मध्य-निम्न वर्गों के

जीवन संघर्षों को ठुकराते हुए विलासिता में मग्न शासन व्यवस्था को पचास के बाद के दशकों में भारतवासियों को सहना पडा। दिन प्रतिदिन मध्यवर्ग का जीवन और दुष्कर हो गया। आर्थिक संकटों के साथ, निरक्षरता, बेरोज़गारी आदि भी मध्यवर्ग का शाप बन गया। अधिकारियों ने जनता को केवल अपने लिए काम करनेवाले नौकर समझा और उसकी मेहनता का फल उससे चूस लिया और अंत में चारों ओर से उत्पीडित सामान्य जनता सर्वहारा बन गई।

इस समय मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित लोगों ने जन आंदोलन की अनिवार्यता की ओर संकेत किया। मार्क्सवादियों ने व्यक्ति की मौलिक स्वतंत्रता के लिए आवाज़ उठाई। क्योंकि उन्हें मालूम था कि *'' व्यक्ति की वास्तविक स्वतंत्रता उसके समाज की स्वतंत्रता है और स्वतंत्र समाज में स्वतंत्र व्यक्ति विकास की क्षमता प्राप्त करता है।* (रांगेर राघव, काव्य, कला और शास्त्र, पृ.१४८) अतः स्वतंत्र समाज की स्थापना के लिए संघर्ष करना मार्क्सवाद का लक्ष्य है।

''पूँजीवादी शोषण एवं उत्पीडन के दौरान ईमानदार रचनाकार परिस्थितियों के दास की तरह व्यवहार नहीं करता, अपितु प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से वह परिस्थितियों के विरोध में सक्रिय रचनात्मक दायित्व का निर्वाह करता हुआ अपनी वर्ग मान्यताओं एवं वर्ग स्थिति की सीमाओं का भी अतिक्रमण करता है।'' (जगदीश्वर चतुर्वेदी, मार्क्सवाद और आधुनिक हिन्दी कविता, पृ.८०) मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित जनवादी कवि भी जनता के मुक्ति आन्दोलन के लिए अपना सशक्त आग्रह प्रकट करते हुए लिखते हैं। जागते रहो सोनेवालो में विद्रोही कवि ने पीडित जन साधारण से यही माँग की है। मुक्ति का मार्ग

समझौता नहीं विद्रोह है। यही कवि का संदेश है। इसलिए मुक्ति के संग्राम में आनेवाले सभी विघ्नों को तहस-नहस करके आगे बढाने का आग्रह वे करते हैः-

रास्ते में उगे हैं काँटे

रास्ते में उगे हैं पहाड

देह में उगे हैं हाथ

हाथों में उगे हैं औज़ार। (हाथ, पृ.४०)

जागते रहो सोनेवालो कविता संग्रह के दूसरे खंड की प्रथम रचना 'कविता' के माध्यम से कवि अपनी कविताओं को युग की नब्ज़ पहचानने का साधन मानते हैं। कविता को संबोधित करते हुए कवि जन मानस में विप्लव पैदा करने का प्रयास करते हैं।

अफरीका, लातिन अमेरिका

उत्पीडित हर हंग एशिया

आदमखोरों की निगाह में

खंजर-सी उतरो। (कविता, पृ.६३)

शासन वर्ग के उलटे विधान के विरोध में घोर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कवि गोरख पाण्डेय लिखते हैं-

उलटे अर्थ विधान तोड दो

शब्दों से बारूद जोड दो

अक्षर-अक्षर पंक्ति-पंक्ति को

छापामार करो। (कविता, पृ.६४)

उदारवादी आर्थिक व्यवस्था की असमानता पर कवि यहाँ अपनी आकुलता प्रकट करते हैं। मार्क्सवाद से प्रभावित गोरख पाण्डेय वर्ग विभाजित समाज की दुर्दशा के रूप में इसे मानते हैं। आर्थिक असमानता पर मार्क्सवाद ने भी आशंका प्रकट की है। ‘‘समाज के विकास का आधार आर्थिक होता है। आर्थिक विकास के अनुसार विचारधारा, संस्कार, आदर्श, राजनीति तथा सांस्कृतिक मान्यताएँ विकसित होती हैं।’’ अतः सर्वहारा वर्ग के हितों की रक्षा के लिए आर्थिक रूप से उनको ऊपर उठाने की आवश्यकता पर कवि यहाँ बल देते हैं।

बूढे घंटाघर के पास नामक कविता में मजदूर लोगों को संबोधित करते हुए साम्राज्यवादी शासन व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने का आह्वान कवि करते हैं। अपने खून और पसीना बहाकर मजदूर लोग महल अट्ठालिकाएँ बनाते हैं। उस महल के हर एक हिस्सा उनकी मेहनत है। लेकिन शासक वर्ग उन्हें उसी महल में कैदी बनाना चाहते हैं। शताब्दियों से मजदूर वर्ग की यही नियति हैं।

जो बूढे घंटाघर के पास महल है

वह तेरा कारागार रह है, लोगो!

वह नींव कि जिस में खून चीखता तेरा

ऊँची छत तेरे कंधों टिकी हुई है

तेरी हथेलियों के ये दरवाज़े हैं

तेरी आँखों से खिडकी कटी हुई है

तेरा हथियार तुम्हारे ही हाथों से

तुमको सदियों से मार रहा है, लोगो! पृ.९१

साम्राज्यवादी-पूँजीवादी शासक वर्ग की यह नीति जनतंत्र में भी है। क्योंकि सत्ताधारी लोग उनके साथ है। मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष का सिद्धांत उपर्युक्त तीनों के विरुद्ध है। आज मजदूर वर्ग कुछ हद तक इस कूटनीति को पहचानते ज़रूर है। लेकिन एक बृहद परिप्रेक्ष्य में उसको सफलता अब भी नहीं है। कवि इसको एक बृहद आकार में प्रतिष्ठित करने का प्रयास कर रहे हैं। एक क्रांति की अनिवार्यता पर बल देते हुए वे लिखते हैं-

टूटे घुटनों का दर्द बन गया आँधी

अब कैद महल की नींव तोडने उठता

जो मुडे दबावों से थे बाजू-कंधे

उनका हुजूम इतिहा मोडने उठता

अब धुआँ दे रही झोंपड़ियों के मन से

विप्लव का कंठ-पुकार रहा है लोगो! (पृ.९१)

सर्वहारा वर्ग की क्रांति के माध्यम से सभी क्षेत्रों में प्रगति की कामना कवि करते हैं। आगे किसी के गुलाम रहने को, किसी के सामने सिर झुकाने को और अपने श्रम को किसी को मुफ्त खिलाने को सर्वहारा वग्र तैयार नहीं है। यह कहना कवि का अभीष्ट है। किसी के

सामने आत्मसमर्पण करते हुए जीने से बेहतर है प्रतिशोध करते हुए मरना। *नहीं* कविता में कवि इस बात को यों प्रस्तुत करते हैं-

नहीं देह की बिक्री श्रम की नहीं

समझौता और आत्मसमर्पण नहीं

नहीं बिना गति नहीं मुक्ति भी नहीं

नहीं-नहीं तो जीने का प्रण नहीं। पृ.७७

साहित्य जन समूह के हृदय का ही विकास हे, वह जनता की चित्तवृत्तियों का ही प्रतिबिंब है, और श्रेष्ठ से श्रेष्ठ साहित्य की जीवंतता का स्रोत सामान्य जनता का यही जीवन है। (शिवकुमार मिश्र,दर्शन, साहित्य और समाज, पृ.५६) जनवादी काव्य इस सामान्य जनता को केन्द्र में रखकर लिखा गया काव्य है। इसलिए इसका मुख्य लक्ष्य जनता की श्रीवृद्धि है। *अपने समय के यथार्थ की विरूपता को, अमानवीय सामाजिक संबन्धों की सीवन को पूरी निर्ममता के साथ सामने रखने* (जगदीश्वर चतुर्वेदी, मार्क्सवाद और आधुनिक हिन्दी कविता, पृ.११०) में जनवादी कवि सदा जगरूग थे। इसलिए गरीब सर्वहारा और मजदूर लोगों की जिन्दगी का सच्चा चित्र प्रस्तुत करने में जनवादी काव्य सफल साबित हुए। आर्थिक-राजनैतिक-दार्शनिक तथ्यों के संयोजन से जिस मजदूर वर्गाधिपत्य सिंद्धांत का प्रतिपादन उस समय प्रचलित थे, जनवादी काव्य की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने में उसका महत्वपूर्ण स्थान है।

जो बात जनवादी कविता केलिए सबसे अहम है और जो जनवादी या जनता के लिए लिखी जाने वाली संपूर्ण रचनाशीलता पर लागू होती है, वह यह है कि रचनाकार

अपनी रचना में जनता की आकांक्षा को चित्रित करे, जनता को हल्पज्ञ और पिछडा हुआ न समझकर उसके जीवन में गहराई से प्रवेश करे और उसके संघर्षरत जीवन से सीख ले। (शिवकुमार मिश्र,दर्शन, साहित्य और समाज, पृ.५६) जागते रहो सोनेवालो में कवि गोरख पाण्डेय ने भी यही किया है। नव उदारवादी व्यवस्था से संत्रस्त सर्वहारा समाज, किसान, मजदूर तथा मध्यवर्ग आदि के प्रति अपनी तीव्र संवेदना प्रकट करते हुए जन आन्दोलन के माध्यम से उनको मुक्ति दिलाने का प्रयास कवि ने किया है।

जन आन्दोलन की सफलता पर कवि को पूर्ण भरोसा है। इसलिए सहभाव एवं सहस्थिति की प्रतीक्षा वे करते हैं। कवि के उस आदर्श समाज में सभी स्वतंत्र, स्वावलंब एवं चेतना से उद्‌भूत है। उन पर किसी का राज नहीं चलता। उनकी मेहनत का फल उनका ही है। कोई पूँजीवादी ताकत वहाँ नहीं है।

नया हो गुलिस्ताँ नयी बुलबुलें हो

मुहब्बत की कोई नई रागिनी हो,

न हो कोई राजा न हों रंक कोई

सभी हों बराबर सभी आदमी हों

न ही हथकडी कोई फसलों को डाले

हमारे दिलों की न सौदागरी हो,

जुबानों में पाबंदियाँ हो न कोई

निगाहों में अपनी नई रोशनी हो।

संपूर्ण समाज का समग्र पुनर्निर्माण के लिए जनतंत्र और समाजवादी ताकतों ने जिस प्रकार समाजवादी विचारधारा को अपना औज़ार बनाया है उसी का साहित्यिक प्रयोग करके एक सुनहरे भविष्य की कामना पाण्डेय जी ने अपनी कविताओं में किया है। यही आज के संदर्भ में भी इन कविताओं की प्रासंगिकता है।

द्वितीय अध्याय
अभिव्यक्ति की प्रतिबद्धता

ऐसा कहा जाता है कि जनतंत्र में सत्ता का नियंत्रण जनता के हाथ में है। सत्ता का चुनाव जनता अपनी इच्छानुसार करती है। लेकिन इस चुनाव के बाद अक्सर जनता असहाय हो जाती है और शासक निरंकुश हो जाता है। तभी तानाशाह का जन्म होता है। जिनके पास अधिकर है वे अपने अधिकारों का प्रयोग जनता के हित के लिए जब करते हैं तब जनतांत्रिक व्यवस्था सफल बन जाती है। जब सत्ताधारी लोग अपने अधिकारों का प्रयोग जनता के शोषण और उत्पीडन के लिए करते हैं तब जनतांत्रिक व्यवस्था तानाशाही व्यवस्था में परिणित हो जाती है। भारत सहित दुनिया में ऐसे अनेक देश हैं जिन्होंने तानाशाही शासन व्यवस्था का दुष्परिणाम बुरी तरह भोगा है और भोग रहा है। मानसिक एवं भौतिक स्तर पर जनता को गुलाम बनाने की रणनीति तानाशाही व्यवस्था अपनाती है। जनता को, सत्ता को, अधिकार की कुर्सी को और सारे नियमों को वह अपने हित के अनुसार तोडती है और अपने नियंत्रण में रखते हैं।

स्वातंत्रोत्तर भारत में जनतांत्रिक व्यवस्था एवं संविधान आगे बढ रहे हैं। लेकिन राजनैतिक शासक वर्ग ने उस व्यवस्था को अपनी इच्छा के अनुसार बदल दिया है। सत्तरोत्तर सामाजिक व्यवस्था में जो तनाव की स्थिति आई, वह तानाशाही शासन व्यवस्था के कारण थी। आपात् काल के रूप में भारतीय इतिहास ने जिस समय को अंकित किया है, वह उक्त सूचित तानाशाही व्यवस्था का उत्तम उदाहरण है। लोकतंत्र की मृत्यु, मानव जीवन का अपमान, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध आदि इस भ्रष्ट विधान का परिणाम है। उस समय जन जीवन पर विविध प्रकार की पाबंदियाँ लगाई गई। उन्हें कैदी बनाकर रखने के लिए अधिकार का दुरुपयोग सत्ताधारियों ने निर्लज्जता से किया। जनता के

अस्तित्व को संकट में डालने के बावजूद भी हम उनको बचाने के लिए शासन कर रहे हैं आदि गलत वादाएँ देकर सत्ताधारियों ने जनता को धोखा दिया। रोटी न देकर केवल कागज़ी रोटी का आश्वासन देकर जनता को उन्होंने उल्लू बनाया। अपने अधिकार एवं सत्ता के माध्यम से सारे विद्रोही स्वरों को उन्होंने परास्त कर दिया। तानाशाही शासन की इन कूटनीतियों के विरोध में क्रांति का आह्वान जनवादी कवियों ने विभिन्न प्रकार से किया। साथ ही अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए प्रतिशोध करने का साहस भी उन्होंने दिखाया।

शासन शब्द में दमन और आतंक अन्तर्निहित है। विलक्षण काल में शासन अपने इस भीषण रूप ग्रहण करते हैं। दमन और अत्याचार ने एक साथ शहर और ग्राम जीवन को आतंकित बनाया है। तब संवेदनशील कवि एवं साहित्यकार अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते थे। दूसरी ओर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर हो रहे हस्तक्षेप के विरुद्ध भी उनको लडना पडा। बगावत के बहाने जब्त करते थे। गोरख पाण्डेय की कविताएँ इस दृष्टि से अवश्य ध्यान देने योग्य हैं। जागते रहो सोनेवालो संग्रह में उन्होंने भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था के विरोध में जन जागरण की अनिवार्यता पर बल देते हुए उसके प्रति विद्रोह का आह्वान दिया है।

भारत की सामाजिक व्यवस्था में जनता एवं जनतंत्र की एकरूपता विशेष उल्लेखनीय है। राजनैतिक सत्ताधारियों ने जब अपने अधिकार को जनता के ऊपर थोपने का प्रयास किया तब जनतंत्र जनता के विरोध में आ गए। स्वतंत्रता ने जिस प्रकार सुनहरे भविष्य का सपना जनता को दिया, राजनेता और कुटिल राजनीति ने उसको विनष्ट कर दिया। राजा और मंत्री ने मिलकर जनता के ऊपर आक्रमण कर दिया। *भेडिया* नामक कविता में पाण्डेय जी इसका वर्णन यों करते हैं-

शेर जंगल का राजा है

भेडिया कानून मंत्री

ताकतवर और कमज़ोर के बीच

दंगल है

जगह-जगह बिखरे पडे हैं खून के छींटे

और हड्डियाँ

जंगल में मंगल है। (पृ.३०)

अधिकार का उपयोग करके जनता को अपने अधीन में रखकर देश में सर्वत्र सुख और शांति है ऐसी गलत सूचनाएँ देकर शासक वर्ग ने सभी लोगों को धोखा दिया है। *भारतीय जनता ने पहले-पहल महसूस किया कि उनकी कोई मानव-गरिमा नहीं है, उनके पास कोई अधिकार नहीं है, उनकी जुबान तक उनके पास नहीं रहने दी गई है, कि तानाशाही सत्ता क्या होती है।* (कर्णसिंह चौहान, साहित्य के बुनियादी सरोकार, पृ.७२)

अधिकार की मादक कुर्सी पर जब कोई आता है तब किस प्रकार वह बदल जाता है इसका उत्तम उदाहरण है पाण्डेय जी की कविता *कुर्सीनामा*। जन साधारण के बीच आम आदमी के रूप में रहते समय अपनी ज़मीन उनको सबसे प्यारी है। लेकिन जब वह सत्ता का अधिकारी बन जाता है तब उसे ज़मीन बुरी लगती है और अपने सहयोगियों को वह भूल जाता है। यहाँ ज़मीन केवल एक भौतिक चीज़ नहीं है बल्कि वह चेतना का प्रतीक भी है।

जब तक वह ज़मीन पर था

कुर्सी बुरी थी

जा बैठा जब कुर्सी पर वह

ज़मीन बुरी हो गयी। (कुर्सीनामा, पृ.४७)

जब कुर्सी उसको मिला तब शासन के उन्माद ने उसे अन्धा बना दिया। अपने अन्धेपन से उसने जनता को अंधा बना दिया। कवि आगे लिखते हैं-

उसकी नज़र कुर्सी पर लगी थी

कुर्सी लग गई थी

उसकी नज़र को

उसको नज़रबंद करती है कुर्सी

जो औरों को

नज़रबंद करता है। (कुर्सीनामा, पृ.४७)

सत्ता की मदहोशी में सत्ताधारी लोग जनता को भूल गए। सारे के सारे मानवीय मूल्यों से वे स्वयं वंचित रह गए। नैतिकता एवं मानवीयता जनतंत्र की धरती से गायब हो गई। जीवन मूल्यों के केन्द्र में जहाँ एक नैतिक मानवीय जीवन संसक्ति थी वहाँ नव उदारवादी सत्ता और भौतिक समृद्धि की लालसा प्रतिष्ठित हो गए। परिणाम यह हुआ कि *देश का मामूली आदमी, किसान, मज़दूर, बुद्धिजीवि, कलाकार हाशिए पर चले गए हैं और केन्द्र में स्थापित हो गया है नेता, अफसर और पूँजीपति। जिसके हाथ में सत्ता है, पूँजी है*

तथा जो आतंक जमा सकता है वही उच्चतर मूल्यों का भी प्रतिमान बन गया है। (रचना के सरोकार, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ.२२७)

कुर्सीनामा में कवि गोरख पाण्डेय लिखते हैं-

फाइलें दबी रहती हैं

न्याय टाला जाता है

भूखों तक रोटी नहीं पहुँच पाती

न ही मरीज़ों तक दवा

जिसने कोई जुर्म नहीं किया

उसे फाँसी दे दी जाती है

इस बीच

कुर्सी ही है

जो घूस और प्रजातंत्र का

हिसाब रखती है। (कुर्सीनामा, पृ.४८)

एक बार शासन की कुर्सी पर बैठ जाने के बाद अपनी कुर्सी की रक्षा के लिए कुछ भी करने को वे तैयार हैं। उन के लिए कुर्सी ही लोकतंत्र है। लोकतंत्र का मतलब ही कुर्सी है। लोकतंत्र की रक्षा अपनी कुर्सी की रक्षा है। जनता और जनजीवन उन के लिए कोई महत्व रखता ही नहीं। कवि लिखते हैं-

कुर्सी ख़तरे में है तो प्रजातंत्र ख़तरे में है

कुर्सी ख़तरे में है तो देश ख़तरे में है

कुर्सी ख़तरे में है तो दुनिया ख़तरे में है

कुर्सी न बचे

तो भाड़ में जाएँ प्रजातंत्र

देश और दुनिया (कुर्सीनामा, पृ.४८)

अधिकार में रहने के लिए, शासन की रक्षा के लिए विद्रोही शब्दों को दबाना आवश्यक है। इसलिए धन और शासन तंत्र दोनों मिलाकर रचे गए षडयंत्र द्वारा जन जागरण एवं विद्रोही स्वरों को दबाने या चुप कराने का प्रयास सत्ता ने किया। आम जनता के खून की महानदी के ऊपर अधिकार की कुर्सी को बलपूर्वक प्रतिष्ठित करने की कूटनीति सत्ताधारियों ने आक्रामक ढंग से अपनायी। जनसामान्य की सुविधा हेतु योजनाएँ बनाने के लिए बाध्य जन नेताओं ने उनकी हत्या की योजनाएँ तैयार कीं। उस के लिए पैसा खर्च किया और सारा देश जन सामान्य के खून से अभिषिक्त हो गए।

खून के समुन्दर पर सिक्के रखे हैं।

सिक्कों पर रखी है कुर्सी

कुर्सी पर रखा हुआ

तानाशाह

एक बार फिर

कत्ले-आम का आदेश देता है। (कुर्सीनामा, पृ.४८)

जनतंत्र के सत्ताधारी सत्ता को भोग रहे हैं। योजना रूपी योग साधना में लगे रहने के बावजूद भी वे वोट के रोगी है। स्वयं रोगी रहकर जनतंत्र को इलाज देनेवाले हैं आज सत्ताधारी वर्ग। उनके पास जो कुछ भी है वह जनता की देन है। जनता ने उनको अधिकार की कुर्सी पर बिठाया है। लेकिन सत्ता की मदहोशी में बेसुध होकर वे जनता के विरुद्ध लड रहे हैं। इसलिए कवि का आग्रह है कि जनक्रांति और विप्लव के माध्यम से इस व्यवस्था को बदल दिया जाए।

अविचल रहती है कुर्सी

माँगों और शिकायतों के संसार में

आहों और आँसुओं के

संसार में अविचल रहती है कुर्सी

पावों में आग

लगने

तक। (कुर्सीनामा, पृ.४९)

सत्तरोत्तर भारतीय समाज में व्याप्त कुर्सी की राजनीति के संकटों को दर्शाना कवि का लक्ष्य है। कुर्सी के लिए पूरे देश में अराजकता फैलाने की रणनीति के विरुद्ध कवि ने *कुर्सीनामा* में अपनी तीव्र प्रतिशोध व्यक्त किए हैं।

प्रगतिशील रचनाकार, पाठक आदि की नज़र में साहित्य समाज को सुधारने की वकालन करती चेतना की वाणी है। उसका अपना स्पष्ट लक्ष्य है। दूसरी ओर तानाशाही व भ्रष्टाचारी सत्ता ऐसी वाणियों को बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं, क्योंकि उनको ठीक से पता है कि ऐसी वाणी अपने एवं अपने अधिकारों के लिए खतरनाक है। ऐसी स्थिति में सत्ता, प्रतिबंध या ज़ब्त के जरिए प्रतिबद्ध साहित्य को दबाने की चेष्टा अपनाए बिना नहीं रह सकते। लेकिन प्रतिबद्ध साहित्यकार इस दबाव में नहीं पडते ओर अपनी स्वतंत्रता को पहचानते हुए उसके लिए संघर्ष करते रहते हैं।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लेखक की बुनियादी शर्त है। सही लेखन के मूल में वह स्वतंत्रता ही मुख्य होती है जो दूसरे सिरे पर अपने पाठक को भी मुक्त करती है। इस स्वतंत्रता के भी कई स्तर हैं। परंपरागत नैतिकता से स्वतंत्रता, भावुकता से स्वतंत्रता, रचना की रूढ़ियों से स्वतंत्रता और अंततः शासन-व्यवस्था से स्वतंत्रता। (रचना के सरोकार, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ.६७) शासक वर्ग के नेताओं ने सत्तर के दशकों में साहित्य तथा अन्य सभी क्षेत्रों को अपनी कडी निगरानी में रखा। स्वतंत्र रूप से रचना धर्म के निर्वहण करने में साहित्यकार वंचित रह गए। पूरी पुलिस-फौज और व्यवस्था ने विद्रोही स्वरों को रोकने के लिए सजग रहने की कोशिश की। सभी विद्रोहियों को, जो चाहे साहित्यकार या सामाजिक कार्यकर्ता क्यों न हो, गिरफ्तार कर दिए गए। गोरख पाण्डेय लिखते हैं-

कुछ लोग बंगाल में

दिल्ली में गिरफ्तार हुए हैं कुछ लोग

कुछ लोग मद्रास में

पुलिस-फौज चुस्त है

व्यवस्था दुरुस्त है

इसलिए राजनीति के बारे में मत सोचना

वरना कविता का कलेवर

विचार के भार से

चरमरा जाएगा। (चिट्ठी, पृ.५६)

सत्ता के हित के अनुसार जो लोग लिखते हैं उनको प्रोत्साहित करने के लिए सारे के सारे समाचार माध्यमों का दुरुपयोग सत्ताधारियों ने किया था। जिस प्रकार सुनहरे भविष्य का वादा देकर जनता को उल्लू बनाया गया, उसी प्रकार स्वच्छ, सुन्दर, नीतियुक्त व्यवस्था की कल्पित कथाएँ लिखनेवाले को सत्ताधारियों ने प्रोत्साहित भी किया। इस पर कवि का व्यंग्य कुछ इस प्रकार है-

देखना सब ठीक हो जाएगा

सरकार चीनी के साथ

कविता भी कंट्रोल रेट पर

मुहैया करेगी। (चिट्ठी, पृ.५६)

व्यक्ति और समाज का अस्तित्व भी भ्रष्टाचार के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अप्रासंगिक बन जाते हैं। आदर्श देश की संकल्पना के साथ सत्ताधारी लोगों ने जनता को भँवर में डाला है।

उनका लक्ष्य देश और जनता का भविष्य नहीं था। केवल अपना आधिकार बनाए रखना ही था। इसलिए कवि यों कहते हैं-

देश के नाम पर

जनता को गिरफ्तार करेगा

जनता के नाम पर

बेच देगा देश

सुरक्षा के नाम पर

असुरक्षित करेगा। (कानून, पृ. ६९)

यदि किसी भी व्यक्ति ने उनके विरुद्ध आवाज़ उठाने की चेष्टा की, तो उसको खत्म करके देश को बचाने के लिए वे अपने को बाध्य समझते हैं और निमर्मता से यह कार्य करते हैं। अतः विद्रोह का समाप्त करने का उनका अपना औजार है सत्ता।

अगर कभी वह आधी रात को

आपका दरवाज़ा खटखटाएगा

तो फिर समझिए कि आपका

पता नहीं चल पाएगा

खबरों में इसे मुठभेड कहा जाएगा। (कानून, पृ. ६९)

नव उदारवादी समाज में, सभी प्रकार के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्तर पर जनता को गुलाम बनाकर रखते हुए अपने अधिकार की परिधि में सभी को लाने की रणनीति तानाशाही व्यवस्था अपनाते हैं। लोकतंत्र के इस शमशान घाट में पूँजीपति, ज़मीनदार और उदारवादी कॉर्पोरेट आदि का चेहरा एक जैसा ही दिखाई देता है। उन्होंने भूखी जनता को रोटी देने के बजाए काग़जी रोटी दिखाकर उनको वंचित किया। उनके लिए महत्वपूर्ण वे शोषक वर्ग हैं, क्योंकि अपने अधिकार को बनाए रखने के लिए उन शासकों को खुश रखना उनके लिए सबसे अनिवार्य है। उदारवादी आर्थिक षडयंत्र के द्वारा सामान्य जनता को गुलाम बनाने की नीति पर कवि यों व्यंग्य करते हैं-

जय हे ज़मीन्दार पूँजीपति

जय दलाल शोषण में सामन्ति

जय हे लोकतंत्र की दुर्गति

भ्रष्टाचार विधायक जय हे।

जय पाखण्ड और बर्बरता

जय तानाशाही सुन्दरता

जय हे दमन भूख निर्भरता

सकल अमंगलदायक जय हे। (अधिनायक वंदना, पृ.७८)

सामाजिक संगठनों को, कार्यकर्ताओं को, सभी सूचना के माध्यमों को अपने हित के अनुसार परिवर्तित करने की राजनैतिक सोच सत्तर के बाद के भारत का अभिशाप है। अपने हित के

लिए देश के हित को भूलनेवाले लोग हमारे समय में वे लोग है जिनको हम नव उदारवादी कह सकते हैं। उनके लिए सभी चीज़ें बिकाऊ है, पूरा देश एक मार्केट है। जिसमें व्यक्ति अपने चरित्र के मूल्य से निर्धारित नहीं होते बल्कि अपनी संपत्ति और खरीददारी के बल के अनुसार निर्धारित होते हैं। नव उदारवादी समाज में वे लोग सबसे महत्वपूर्ण जिनके पास खरीदने-बेचने की क्षमता हो। उनके लिए आम आदमी परिधि के बाहर है। व्यवस्था और कानून वे अपने हित के अनुसार निर्धारित एवं परिभाषित करते हैं। कवि गोरख पाण्डेय की इस पर प्रतिक्रिया देखिए।

याद रक्खो

जहाँ कानून का मतलब

भूख-अपमान और खून हो

हमलावर होना ही सही कानून है। (उठो मेरे देश, पृ.१०७)

समकालीन भारतीय मध्यवर्ग आंतरिक एवं बाह्य संघर्षों से गुज़रते हुए आज भी संत्रस्त है। हर एक चुनाव के बाद सत्ता में नए-नए लोग आए लेकिन सभी ने एक न एक तरफ़ शासकीय अधिकार को जनता के ऊपर थोपने का प्रयास किया है। *अगर हम शासक वर्गों द्वारा जनता के मूलभूत अधिकारों पर किए जा रहे हमलों का मुकाबला करना चाहते हैं, यदि हम नागरिक अधिकारों की सुरक्षा चाहते हैं, यदि हम इस सवाल को बुनियादी परिवर्तन के सवाल से जोडना चाहते हैं तो उसके लिए ज़रूरी है कि हम वास्तविकता से आँख मिलाएँ और अपनी कठमुल्ला समझ के सीमित दायरे को तोडें। तानाशाही ताकतों को, तानाशाही को, रोकने के लिए ज़रूरी है कि इस मुद्दे पर जनता के व्यापकतम हिस्सों को एकजुट किया जाए। आपात् काल के अनुभव ने इसकी यथार्थ संभावनाएँ उत्पन्न कर दी*

हैं। अब भी अगर हम इसका फायदा नहीं उठाते और तानाशाही-विरोधी भावनाओं को संगठित करके सही दिशा नहीं देते, तो इतिहास इसके लिए हमें कभी माफ नहीं करेगा।
(कर्णसिंह चौहान, साहित्य के बुनियादी सरोकार, पृ.७७)

नियमों और अधिकारों के माध्यम से जनता को नियंत्रित करते हुए उनको अपने वश में करने की कूटनीति का शुरुवात सत्तर के बाद में व्यापक हो गया था वह अब भी ज़ारी है। जागते रहो सोनेवालो में कवि जनता के समक्ष व्यवस्था की बर्बरता का चित्र प्रस्तुत करते हुए सतर्क रहने का आह्वान देते हैं। जनतंत्र में जनता के हितों को सुरक्षित रखने के लिए जन आंदोलन को ही एक मात्र उपाय बताते हैं।

तृतीय अध्याय

आदमी की हैसियत के लिए लडाई

दलित जीवन के प्रति हमदर्दी

सार्वजनिक क्षेत्र में, परिष्कृत समाज के व्यवहारों से बहिष्कृत रहने के लिए विवश समाज के रूप में आज दलित चर्चा के केन्द्र में है। अस्पृश्य कहकसर जिसको परिष्कृत समाज ने बाहर कर दिया है उस पर लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है। इस कारण से दलित साहित्य जन सामान्य का साहित्य है जिसके केन्द्र में मनुष्य की उपस्थिति हो। मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के कारण दलित साहित्य यथार्थवादी है। उसमें पाठक की संवेदनशीलता ही रचनाकार का औजार है। *दलित साहित्य में दलित जीवन का यथार्थवादी चित्रण यथार्थ की मात्र नकल नहीं है, बल्कि साधारण परिस्थितियों में साधारण चरित्रों का वास्तविक पुनःसृजन है। इस कार्य में आदर्श और कलात्मक पांडित्यपूर्ण प्रदर्शन की आवश्यकता कतई नहीं है- पाठक की चेतना और अनुभूति को प्रभावित करनेवाली गहन संवेदना से ही यह संभव है।* (शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ.४१) इस प्रकार सामाजिक समता-बंधुत्व-स्वाधीनता का आग्रह जनसामान्य तक पहुँचाना दलित साहित्य का ध्येय है।

हिन्दी की जनवादी काव्य धारा शोषित एवं उत्पीडित सर्वहारा वर्ग के प्रति अपनी सहानुभूति एवं समानुभूति पूर्णतः प्रकट करती आई है। इसलिए दलितों का उद्धार भी जनवादी काव्य शिल्पियों का लक्ष्य रहा है। सामाजिक एवं जातिगत शोषण के विरुद्ध, जीवन की सच्चाइयों से लडकर समता के सिद्धांत पर आधारित आदर्श समाज की परिकल्पना जनवादी काव्य की सबसे बडा मकसद रहा है। इसलिए उन्होंने *यथार्थ और जीवन की सच्चाईयों से कटकर वर्तमान से निरपेक्ष भाव रखनेवाले साहित्य को निर्जीव कहा।* (ओमप्रकाश वात्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ.२८)

जागते रहो सोनेवालो संग्रह में गोरख पाण्डेय ने भी दलित शोषण के प्रति अपनी तीव्र प्रतिक्रिया प्रकट की है। *आदिवासी होना जुर्म है* यही विचार भारतीय समाज में बहुत पहले से है। *हज़ारों वर्षों से दलितों को सत्ता संपत्ति और प्रतिष्ठा से वंचित रखा गया। दलित इस व्यवस्था के विरुद्ध बगावत न करें इसलिए यह व्यवस्था ईश्वर ने बनाई है, ऐसा सिद्धांत प्रतिपादित किया गया।* (शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ.४१) पाण्डेय जी की कविताएँ इस सामाजिक अन्याय के विरुद्ध तीव्र प्रतिशोध है।

जब हम गेहूँ काअ-दाँवकर लाते हैं

तो अछूत नहीं होते

मगर जब आप उसकी रोटी चाभते हैं

तो अछूत हो जाते हैं

यह कहाँ का धरम हैं? (ज़मीन्दार सोचता है, पृ.७१)

वर्ण व्यवस्था के अमानवीय बंधनों ने शताब्दियों से दलितों के भीतर हीनता भाव को पुख्ता किया है। धर्म और संस्कृति की आड में साहित्य ने भी इस भावना की नींच सुदृढ़ की है। ऐसे सौन्दर्यशास्त्र का निर्माण किया गया जो अपनी सोच और स्थापनाओं में दलित विरोधी है। (ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ.२६) इतिहास-पुराणों में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। उस प्रकार मुख्य श्रेणी से अलग किए गए लोगों पर तीव्र संवेदना व्यक्त करना कवि का उद्देश्य रहा है।

भूखी चिडिया की कहानी नामक कविता में पाण्डेय जी संकुचित भारतीय मनःस्थिति पर कटु व्यंग्य करते हुए आदर्श समाज की संकल्पना पर सवाल उठाते हैं।

खाने और पीने के लिए कुछ भी न मिलने पर एक भूखी चिडिया ने अपने राजा से शिकायत की तो राजा ने उसे गुनाह कहकर, दाने की चोरी के जुर्म पर सज़ा देने का निर्णय लिया।

चिडिया बनाम दाने के मुकदमे की

भूखी थी चिडिया

इसलिए गनाहकार थी

मारी गई चिडिया

जो भूखी थी। (भूखी चिडिया की कहानी, पृ.२५)

इस कविता में चिड़िया उन सभी दलित लोगों का प्रतीक है जो शोषण-अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने में बिल्कुल असमर्थ हो। यहाँ कवि का संकेत शोषण की रणनीति की ओर है। नव उदारवादी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी यह विचार उतना प्रासंगिक है जितना सत्तर के समय में थे। दलित आज भी वही है जिनके पास जीने का अधिकार भी नहीं है। *दलितों को आज दया-सहानुभूति नहीं चाहिए। सम्मान से जीने का अधिकार चाहिए। और अधिकार माँगने से नहीं मिलता, उस केलिए शक्ति से छीनने की संगठन-कला चाहिए।* (डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल वागर्थ, अप्रैल-मई २००३, पृ.१८)

ज़मीन्दार सोचता है कविता का तिलकू उस संगठन-कला से युक्त व्यक्तित्व है। किसानों पर किए जानेवाले अत्याचारों के विरुद्ध वह अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त करता है।

अब सिर उठाकर चलता है

मूँछ पर ताव देता है तिलकू

बंसखट झोंपडी से बाहर खींच लाता है

ठाकुर-ब्राह्मण के सामने भी

उस पर बैठता है। (जमीन्दार सोचता है, पृ.७०)

परिष्कृत समाज की जीवन शैली के अनुसार अपने को परिवर्तित करने में दलितों के सामने सबसे बडी कठिनाई आर्थिक कठिनाई है। अपने बच्चों को स्कूल भेजना, नौकरी पाना, आराम से जीवन जीने का सपना देखना आदि सब आज भी दलितों के लिए सपना मात्र रहा गया है। तिलकू के माध्यम से कवि उस सपने का साकार होने की आशा करते हैं।

अपने बेटे के लिए पेट काटकर

कलम कागज जुटाता है

उसे हाकिम बनाने के ख्वाब देखता है

अपनी ज़मीन होने के ख्वाब देखता है। (जमीन्दार सोचता है, पृ.७०)

आज दलित शब्द कुछ विस्तार पा रहा है। *वर्तमान समाज में दलित केवल हरिजन और नव बौद्ध नहीं । गाँव की सीमा के बाहर रहनेवाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन खेत मज़दूर, श्रमिक, कष्टकरी जनता और यायावर जातियाँ सभी की कभी दलित शब्द से व्यख्यायित होती हैं।* (शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ.३८) एक मानवतावादी दृष्टिकोण से संपूर्ण अस्पृश्य जनता को एक साथ देखने की साम्यवादी दृष्टि दलित साहित्य को आज है। यही मानवीय दृष्टिकोण जनवादी काव्य का

भी है। जनवादी काव्य मानवतावादी और यथार्थवादी है। इसलिए सफ़ेदपोश नागरिकों से कवि पूछते हैं-

देखा है कभी तुमने

उस निहंग आदिवासी भूख को

सडकों पर नाचते हुए?

सफ़ेदपोश नागरिकों के आगे

सलाम की अदा में झुका सिर

मालिक, एक पैसा, दो पैसा

भगवान के लिए मालिक..... (भूख आदिवासी पृ.९४)

साहित्य समता, स्वाधीनता आदि की निरंतर चाह है। एकता के स्तर पर संपूर्ण मानवता को देखने का स्वतंत्र दृष्टिकोण साहित्य का अनिवार्य गुण है। दलित साहित्य का वर्तमान, इस दृष्टि की पुष्टि कर देती है। आज़ादी का अदम्य आग्रह, अपनी पहचान को बनाए रखने की तीव्र इच्छा आदि ने दलित आन्दोलन को शक्ति प्रदान किया। आज साहित्य एवं सामाजिक क्षेत्र में दलित समस्या एक क्रांतिकारी सामाजिकता का निर्माण कर रहा है उसमें विश्वविद्यालय से लेकर बाज़ार तक के लोग शामिल है। आज़ादी का नारा आज की सबसे बडी प्रतिक्रिया है।

स्त्री- सहस्थिति की कविता

स्त्री शोषण के विरुद्ध अपनी तीव्र संवेदननात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करने में जनवादी कवि कभी हिचकते नहीं है। इसलिए नारी लेखन की यह पुरुष दृष्टि सदा चर्चा में है। धूमिल, कुँवर नारायण, सक्सेना, गोरख पाण्डेय....श्रेणी में आगे बहुत नाम है। जागते रहो सोनेवालो में कवि गोरख पाण्डेय ने विशेष रूप से छ कविताएँ स्त्री शोषण पर लिखी है।

भारतीय समाज में नारी की स्थिति सदा विडंबनात्मक रही है। जनम से ही वह कैदी है। *स्त्री की सबसे बडी त्रासदी यही है कि उसकी भूमिका हमेशा ही अपनी ज़रूरतों को ध्यान में रखकर घर में पुरुष या समाज में व्यवस्था तय करती है।* (मणिमाला, इक्कीसवीं सदी की ओर, संपा. सुमन कृष्णकांत, पृ.६३) बंद खिडकियों से सदा टकराती रहती है भारतीय स्त्री।

कानूनन समान है

वह स्वतंत्र भी है

बडे बडों की नज़रों में तो

धन का एक यंत्र भी है

भूल रहे वे

सबके ऊपर वह मनुष्य है

उसे चाहिए प्यार

चाहिए खुली हवा। (बंद खिडकियों से टकराकर, पृ.२०)

भारतीय नारी आर्थिक समस्याओं से भी अधिक सामाजिक समस्याओं से पीडित है। उसके चरित्र एवं नीयत पर समाज ने बहुत अधिक नियंत्रण की रेखाएँ खींची हैं। कभी मंगलकारिणी हो तो कभी अशुभकारिणी या अमंगलकारी। पति हो तो पतिव्रता रहने के लिए बाध्य, पति न हो तो विधवा की नरक यातना में रहने केलिए विवश। अर्थात् या तो बाध्य है या फिर विवश। *बुआ के प्रति* कविता की पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार है।

मगर ज़िन्दगी अब उस के लिए

कलंक का धब्बा-भर होगी

वह सुखी हो सकती थी

मगर अब सुख का सपना

देखना भी उसके लिए पाप होगा

वह माँ हो सकती थी

मगर अब मातृत्व

उसके लिए गुनाह होगा। (बुआ के प्रति, पृ.३५)

एक अन्य संदर्भ में कवि ने स्त्री जीवन की विवशता को कुछ इस प्रकार पंक्तिबद्ध किया है।

घर-घर में श्मशान-घाट है

घर-घर में फाँसी-घर हैं

घर-घर में दीवारें हैं

दीवारों से टकराकर

गिरती है वह। (बंद खिडकियों से टकराकर, पृ.२१)

हमारी नैतिकता उस सीमा तक जाती है जहाँ स्त्री की चर्चा शुरु हो जाती है। वर्तमान समाज स्त्री की स्वतंत्रता उस हद तक मानती है जहाँ वह पुरुष की दृष्टि के भीतर हो। परंपरा को हमने उस प्रकार स्वीकार किया है जिस प्रकार वह हज़ारों साल पहले रहा हो। इसलिए हम चाहते हैं कि *स्त्री स्वतंत्र होकर सामाजिक, राजनैतिक या अन्य क्षेत्रों में अपने आपको स्थापित भी करे, लेकिन नैतिकता के क्षेत्र में हज़ारों साल पहले के महलों और पर्दों में कैद रहनेवाले सामंती चत्रित और शील की मूर्ति भी बनी रहे।* (राजेन्द्र यादव, हंस, मेरी तेरी उसकी बात, सितंबर, १९९५)

स्त्री की संवेदनाएँ, उनके विचार सभी पुरुष द्वारा निर्धारित है। सुख में हँसना हो या दुख में रोना, स्त्री को आचार संहिताओं के अनुसार करना होगा। घर की वह देवी है, मगर पत्थर की।

तुमने जाना है किस तरह

स्त्री का कलेजा पत्थर हो जाता है

स्त्री पत्थर हो जाती है

महल अटारी में

सजाने के लायक। (सात सुरों में पुकारता है प्यार, पृ.४२)

विद्रोही स्त्री समाज व्यवस्था को किस प्रकार परिवर्तित कर सकती है इसका उदाहरण है *कैथर कला की औरतें।* रूढिग्रस्त समाज विद्रोही ग्रामीण औरतों के व्यवहारों को किस प्रकार देखते हैं उसका चित्रण इस कविता में है। अपनी बुद्धि और एकत्रित शक्ति के माध्यम से क्रांतिकारियों को सहायता देनेवाली स्त्री की छवी इस कविता में है। पुरुष की प्रतिक्रिया के रूप में कवि लिखते हैं जो आज नव उदारवादी समाज में भी संगत है।

राम राम, घोर कलिजुग आ गया

औरत और लडाई?

उसी देश में जहाँ भरी सभा में

द्रौपती का चीर खींच लिया गया

सारे महारथी चुप रहे

उसी देश में

मर्द की शान के खिलाफ यह जुर्रत? (कैथर कला की औरतें, पृ.१३)

आज विद्रोही स्त्री विवश होकर ही सही बोलने को तैयार हो गई। अपनी नियति का निर्णय अब वे खुद करने के लिए आतुर है। पुरुष की तृष्णा के विरुद्ध, जो आज नव उदारवादी बाज़ार की उपभोक्तावादी मानसिकता से लेकर घर के चाहदीवारों तक व्याप्त है, अपनी आवाज़ बुलन्द करने के लिए आज स्त्री बेचैन है।

तुम डोली सजा देना

उसमें काठ की पुतली रख देना

उसे चूनर भी ओढा देना

और उनसे कहना—

लो, यह रही तुम्हारी दुल्हन। (सात सुरों में पुकारता है प्यार, पृ.४३)

आज नव उदारवादी समाज में नारी को खुद बदलना होगा। *नारी की जड़ता तब तक नहीं टूटती, जब तक वह स्वयं विद्रोह नहीं करती। अपने पर हो रहे अन्याय को अन्याय मानकर न्याय की माँग नहीं करती। उसे पाँव तले वह ज़मीन चाहिए, जो ठोस हो। समाज में वह अपने उन दृढ पाँवों पर खडे होकर अपने अस्तित्व की रक्षा करे, उसे सुरक्षित स्थितियों का अहसास हो।* (डॉ.सरोजिनी प्रीतम, नारी जडता कैसे तोडेगी, पृ.१०३) इस बात को आत्मसात करते हुए कवि ने लिखा है।

ये आँखें हैं तुम्हारी

तकलीफ का उमडता हुआ समुंदर

इस दुनिया को

जितननी जल्दी हो

बदल देना चाहिए। (आँखें देखकर, पृ;२९)

जागते रहो सोनेवालो नामक कविता संग्रह की स्त्रीवादी कविताओं के अध्ययन से गोरख पाण्डेय की जनवादी मानसिकता का पूर्ण चित्र पाठक को मिलता है। ये कविताएँ स्त्री शक्ति के सामाजिक पक्ष को दृष्टि में रखकर लिखी गई कविताएँ हैं। नारीवाद के इस पुरुष पक्ष से एक बात स्पष्ट है कि स्त्री वाद पुरुष विद्वेषी नहीं है। पितृसत्तात्मक सामाजिक स्थिति

की पुर्नव्याख्या कवि का उद्देश्य है। *आज तक के लेखन, कला, राजनीति, दर्शन, तत्वज्ञान ने पुरुषत्व के पुनर्निमाण को अपना विषय नहीं बनाया है। लेकिन स्त्रीवाद का मुख्य विषय यही है।* (सारा जोसफ, मातृभूमि साप्ताहिक, २७ जनवरी २००२)

सभ्य समाज की परिकल्पना में नारी-पुरुष के भेदभाव को मिटाना अनिवार्य है। कवि गोरख पाण्डेय की मानसिकता भी यही है। सभ्य समाज वही है जहाँ लिंग के नाम पर भेद न हो, चाहे वह तीसरे लिंग के भी क्यों न हो। यही कवि का अभीष्ट है। इसलिए आज़ादी को कवि देखते हैं अपनी ही विशेष दृष्टि से और लिखते हैं

और जब सब लोग आज़ाद होंगे

और खुशहाल

तब सम्मानित

किया जाएगा जिन्हें

स्वतंत्रता की ओर से

उनकी पहली कतार में

होगी

कैथर कला की औरतें। (कैथर कला की औरतें, पृ.१३-१४)

जागते रहो सोनेवालो संग्रह की कविताएँ जनवादी कवियों की सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि का उत्तम उदाहरण है। सामाजिक समानता की अनिवार्यता पर प्रकाश डालना कवि का उद्देश्य है। इसलिए स्त्री शक्तीकरण एवं स्वायत्तता को कवि महत्वपूर्ण

मानते हैं। समाज में स्वतंत्र पहचान जब तक नारी को नहीं मिलती तब तक परिष्कृत समाज की परिकल्पना अपूर्ण रहेगी। इसलिए समानाधिकार के सशक्त आह्वान के रूप में इन कविताओं का विशेष प्रासंगिकता एवं महत्व हैं।

चतुर्थ अध्याय-उपसंहार

राजनीति, हमारे रचने की भाषा को लगातार छोटा-संकरा कर रही है और एक बडी हद तक आत्ममुग्धता के आसान रास्तों पर धकेल रही है, आधुनिक कवि के लिए एक मारक एहसास नहीं है। वह खुश है कि वह स्वतंत्र शब्द की साधना या महान क्रांति का संघर्ष पूरा कर रहा है। (समकालीन कविता की मध्यवर्गीय चेतना, प्रभात त्रिपाठी, कविता का यथार्थ संपादक ए अरविन्दाक्षन पृ १३२ जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, २००३)

स्वाधीनता, समता, अधिकार आदि का संबन्ध सदा ही संघर्ष के साथ रहा है। जब संघर्ष खत्म होगा तब उपर्युक्त बातें खतरे में पड जाएँगे। सत्ता कभी भी स्वाधीनता, समता इत्यादि के पक्ष में नहीं है। सत्ता जिसके पास है वह स्वतः जनता को भूल जाता है। इसलिए अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सत्ता के विरुद्ध लडने के लिए जनता सदा मजबूर है। जनतंत्र में भी जब यह स्थिति आई तब वह जन आंदोलन बन गए। जनवादी काव्य इस संघर्ष का तेवर है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित जनवादी काव्य का मुख्य लक्ष जन सामान्य की उन्नति थी। इस के लिए अधिकारी वर्गों के साथ अपनी रचनाओं के माध्यम से वे निरंतर संघर्ष करते रहे। पाण्डेय जी की कविताओं की संवेदना इसी जनवादी दृष्टि की पुष्टि करती है।

मार्क्सवादी विचारधारा ने जिस प्रकार सर्वहारा के प्रति अपनी चिंता प्रकट की है, उसी मानसिकता को साहित्यिक रूप देकर उसे पंक्तिबद्ध करने का प्रयास पाण्डेय जी ने जागते रहो सोनेवालो संग्रह में सफलतापूर्वक किया है। केवल सर्वहारा के प्रति हमदर्दी प्रकट करते हुए चुप रहना उनका उद्देश्य नहीं है। जनता से क्रांति का आह्वान करते हुए उस क्रांति से निर्मित एक सुनहरे भविष्य की कल्पना भी कवि करते हैं। समता के उस भविष्य को गढने के लिए जन आंदोलन को ही कवि एकमात्र रास्ता बताते हैं।

सत्ता की मदहोशी ने जनतंत्र को जिस प्रकार विकल किया गया था, उसी का चित्रण आपात्कालीन भारत की सामाजिक स्थिति के आधार पर कवि प्रस्तुत करते हैं। केवल जनता को ही नहीं साहित्य तथा अन्य सभी क्षेत्रों को सत्ताधारियों ने अपने अधीन में रखा और उसके साथ मनमानी किया। सत्ताधारी लोग लेखक की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के ऊपर जो पाबंदियाँ लगाई थीं, उसी के विरुद्ध आक्रोश पाण्डेय जी ने अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। भीषण समाज व्यवस्था को सहने के लिए मजबूर आम आदमी की कठिनाईयों पर भी प्रकाश डालने का प्रयास कवि ने इस संग्रह की कविताओं में किया है। तानाशाही राजनीति से असंतुष्ट कवि जनता को उसके विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए प्रेरित करते हैं। वर्तमान समाज में भी तानाशाही तंत्र यहाँ विद्यमान है और उससे सतर्क रहने की चेतावनी भी इन कविताओं में देख सकते हैं।

धर्म और धार्मिकता के स्वामियों के लिए मानवीयता एक आड मात्र है। मानवीयता से उनका कोई वास्ता नहीं है। उनका संबन्ध अपने स्वार्थ एवं लोभ से हैं। धर्म एवं धार्मिकता इस प्रकार उनके लिए अन्याय एवं असत्य की लडाई का ढाल मात्र है। राजनीति भी ऐसे धार्मिक रंग अपनाने लगी और स्थिति संकीर्ण होने लगी। दोनों की दोस्ती बढने लगी उसी के अनुसार जनतंत्र त्राही-त्राही करने लगे। धर्म अपने अध्यात्म पक्ष से हटकर अधिकार और वोट की बातों में ध्यान केन्द्रित करने लगे। फलतः धर्मनिरपेक्ष जनतंत्र खोखला सिद्ध हुआ, वहाँ कहीं तानाशाही, कहीं धर्म सापेक्ष्य कार्य होने लगा। अपनी कविताओं के माध्यम से पाण्डेय जी जनता को चेतावनी देना चाहते हैं। क्यों कि उन्हें मालूम है कि धर्म और धर्मनिरपेक्षता एक साथ चलनेवाला नहीं है। इसलिए धर्म निरपेक्ष राष्ट्र बनने के लिए वर्तमान धार्मिक हरकतों को रोकने या त्यागने का उद्घोष कवि देते हैं।

धार्मिक पाखण्डता के शिकार साधारण लोगों के प्रति अपनी तीव्र संवेदनाएँ प्रकट करते हुए धर्म को जन विद्धेषी कहकर उसको छोडने का आग्रह कवि करते हैं।

इस प्रकार सहिष्णुता, बंधुत्व, समानता की सामाजिक व्यवस्था की अनिवार्यता पर कवि बल देते हैं। नव उदारवादी भारतीय सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में राजनैतिक भ्रष्टाचार, आर्थिक असमानता, धार्मिक वैमनस्य आदि समानता एवं सहिष्णुता वादी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में सबसे बडी चुनौती है। इसलिए उपर्युक्त मानसिकता से बचके रहने का निवेदन कवि करते हैं।

दलित अभिव्यक्ति की समस्या वर्तमान समाज में सबसे अधिक चर्चित विषयों में एक है। दौर्भाग्यपूर्ण जन्म और कर्म के सिद्धान्त द्वारा दलितों को सार्वजनिक सामाजिक कार्यक्षेत्र से बहिष्कृत करने का उपक्रम आज सत्ता की रणनीति है। जनवादी कविता इसके विरुद्ध सशक्त आवाज़ रही है। पाण्डेय जी की दलित चेतनावादी कविताएँ इसका उत्तम दृष्टान्त है।

सामाजिक कार्य क्षेत्र में सभी का समान अधिकार है। जनवादी कवियों ने अपनी समाजवादी जीवन दृष्टि के द्वारा इस बात को स्थापित करने का हर संभव प्रयास किया है। दलितों को असभ्य, अस्पृश्य कहकर सार्वजनिक क्षेत्र से बहिष्कृत करने की कूटनीति के विरुद्ध पाण्डेय जी की कविताएँ अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। चातुर्वण्य के सिद्धान्त के द्वारा सभ्यता एवं संस्कार को नापने की पद्धति पर कवि करार व्यंग्य करते हैं। अपनी मिट्ठी और अपनी संपत्ति की रक्षा के लिए कर्मरत होने का आह्वान भी कवि दलितों को देते हैं। साथ ही सामान्य जनता से भी उनका यही माँग है कि वे भी इस संघर्ष में दलितों के साथ रहे।

वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को प्रस्तुत करते हुए समाजवाद ने जिस प्रकार सामाजिक समानता की माँग की, उसी प्रकार नारी वाद भी सामाजिक समानता के लिए लड रहे हैं। अतः नारी वाद समाजवादी विचारधारा का दूसरा रूप ही है। इसलिए जनवादी कविता में स्त्री जीवन की स्वतंत्रता के प्रति जागरूकता होना स्वाभाविक है।

ग्रामीण नारी जीवन का सुन्दर चित्र खींचकर पाण्डेय जी ने घर और बाहर उनके ऊपर होनेवाले अत्याचारों के प्रति अपना विरोध प्रकट किया है। स्त्री को केवल अर्धविकसित पुरुष के रूप में देखनेवाले समाज में शारीरिक तथा मानसिक स्तर पर पीडित रहनेवाली नारी जीवन के यातनापूर्ण चित्रों को पंक्तिबद्ध करते समय क्रांतिकारी कवि की पंक्तियाँ और प्रखर हो जाती हैं। विद्रोही नारी कवि की कामना है। औरत को भी कम से कम मनुष्य के रूप में देखने का निवेदन पाण्डेय जी की कविता में है।

नव उदारवादी सामाजिक ढाँचे में निरक्षरता, अक्षमता, बेरोज़गारी, धार्मिक असमानता आदि अनेक कारणों से संत्रस्त सामाजिक जीवन की कष्टताओं का सही पहचान पाण्डेय जी की कविताओं की खासियत है। जागते रहो सोनेवालो नामक कविता संग्रह का मुख्य विषय भी यही है। सब कुछ सहने के लिए बेबस एक जनता का दर्दभरी कराह, प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में खडे हज़ारों का मुस्कान, संत्रस्त युवा पीढि का तेज स्वर आदि अनेक संदर्भों में पाण्डेय जी की कविताओं का अध्ययन संभव है। क्यों कि यहाँ कविता एक संघर्ष है, जो मानवीयता की रक्षा के लिए एक मात्र उपाय है। क्यों कि कविता की शक्ति विचार की शक्ति है। विचार जब औजार बन जाता है तो और किसी भी चीज़ की ज़रूरत समाज के लिए नहीं है। क्यों कि कविता चेतना की आत्मवाणी है, जिसकी स्निग्धता ही श्रेष्ठ सामाजिकता है।

परिशिष्ट

उपजीव्य एवं उपस्कर ग्रथ

1. अरविन्द जैन, औरत होने की सज़ा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २००२
2. ओमप्रकाश वात्मीकी, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, २००१
3. कर्ण सिंह चौहान, साहित्य के बुनियादी सरोकार, पीपुल्स ल्टिरैसी, १९७२
4. कात्यायनी, दुर्ग द्वार पर दस्तक, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, १९९७
5. कृष्णदत्त पालीवाल, समय से संवाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९९३
6. गायत्री माहेश्वरी, समकालीन कविता में स्त्री, संजय कुक सेंटर, वाराणसी, १९९८
7. गिरिराज शरण अग्रवाल, दलित जीवन की कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, १९९६
8. डॉ.गंभीर एस, साठ्ठोत्तर हिन्दी कविता में राजनैतिक चेतना, विद्याविहार, कानपुर
9. जगदीश्वर चतुर्वेदी, मार्क्सवाद और आधुनिक हिन्दी कविता, राधा प्रकाशन, २००२
10. नामवर सिंह, दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९८२
11. नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली १९६८
12. मधु बी जोशी, विद्रोही स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २००१
13. मनीषा, हम सभ्य औरतें, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, २००२
14. डॉ.मुन्ना तिवारी, दलित चेतना और समकालीन हिन्दी उपन्यास, सं जय बुक सेंटर, वाराणसी, २००१
15. मैनेजर पाण्डेय, शब्द और कर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९७
16. मैनेजर पाण्डेय, संकट के बावजूद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९८
17. राज किशोर, हरिजन से दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००४
18. राजेन्द्र यादव, आदमी के निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, २००१
19. राजेन्द्र यादव, आगे रास्ता बंद है, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९८
20. राधा कुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९५
21. रोहिताश्व, समकालीन कविता और सौन्दर्य बोध, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९६
22. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, रचना के सरोकार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९८७
23. शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,२०००

24. शिवकुमार मिश्र, दर्शन, साहित्य और समाज, अरुणोदय प्रकाशन, १९९२
25. शंभूनाथ, संस्कृति की उत्तर कथा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,२०००
26. सुमन कृष्णकांत, इक्कीसवीं सदी की ओर, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, २००१
27. गोरख पाण्डेय, जागते रहो सोनेवालो, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, १९८३
28. Sardesai S.G. Marxism and The Bhagvat Geeta, People's publishing House

पत्र-पत्रिकाएँ

1. कल के लिए, अप्रैल-सितंबर, २००४
2. करेंट बुक्स बुल्लट्टिन, मई २००२
3. दस्तावेज़, ९९, अप्रैल-जून, २००३
4. भाषा पोषिणी, फरवरी, २००४
5. मधुमती, फरवरी-मार्च, २००२
6. मातृभूमि साप्ताहिक, २७ जनवरी २००२, ३ मार्च २००२, १७ मार्च २००२, ७ अक्तूबर २००१, ९ दिसंबर २००१
7. साक्षात्कार, सितंबर, २००२
8. वागर्थ, अप्रैल-मई २००३
9. हंस, जनवरी १९९१, फरवरी २००४, मार्च १९९३, अप्रैल २००३, मई २००४, आगस्त २००४